अपराजिता : वर्ष 53 अंक 01: 2025
स्थापना वर्ष : 1972 (प्रिंट), 2025 (ऑनलाइन)

गाँधी जी के मनोवैज्ञानिक,शैक्षिक विचार की उपादेयता

डॉ अरिमर्दन सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग

संस्थाएं अन्ततः मानव-मऩ की उपज हैं। जैसा मनुष्य का मन होगा़ वैसा ही सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं की वह सृष्टि करेगा। इसलिए अनेक सामाजिक-राजनीतिक विचारकों ने राजनैतिक संस्थाओं पर विचार करने ़से पहले मानव-मन के भीतर झांकने की और मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों का अध्ययन ़करने का प्रयास किया है। स्वयं 'यूनेस्को' की प्रस्तावना में कहा गया है कि युद्ध मनुष्य के मन में ही पैदा होते हैं। इसलिए हमें शांति की रक्षा के साधन भी मनुष्य के मन में ही खोजने होंगे। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि मनोविकार सदैव सताते रहते हैं। ये मनोविकार मनुष्य के ज्ञान को उसी तरह ढक देते हैं जैसे राख आग को ढक देती है। मनुष्य अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है और मनोविकारों को वश में कर सकता है। गीता की भाषा में शरीर से परे इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों से परे मन हैं, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है। मनुष्य अन्ततः आत्मरूप है और अपने इस रूप को पहचानना ही उसके अस्तित्व की सार्थकता है। जीवात्मा आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु है। गॉधी ने आजीवन इन तथ्यों को जीने का प्रयास किया, उनका सम्पूर्ण राजदर्शन मानव मन की संवेदनाओं पर अवलंबित है । प्रस्तुत शोध पत्र में इसी को प्रतिपाद्य मानते हुए समकालिक परिस्थितियों में गांधी के मनोवैज्ञानिक शैक्षिक विचारों की उपादेयता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

महात्मा गाँधी का समूचा सामाजिक-राजनीतिक दर्शन, आचरण का कार्यक्रम है। उनका कहना है कि मानसिक अहिंसा की स्थिति को प्राप्त करने के लिए काफी कठिन अभ्यास की जरूरत है। हमारे दिनों दिन जीवन में व्रत और नियमों का पालन उपयोगी है। यह अनुशासन हमें रूचिकर भले ही न लगे, फिर भी वह उतना ही आवश्यक है जितना कि एक सिपाही के लिए। गांधी जी मानते थे कि यदि हमारा चित इसमें सहयोग न दे तो केवल बाह्य आचरण दिखावे की चीज हो जायेगी। इससे खुद हमारा नुकसान होगा और दूसरों का भी। मन, वाणी और कर्म में जब उचित संतुलन हो तभी सिद्धावस्था प्राप्त हो सकती है। लेकिन यह अभ्यास एक प्रचण्ड मानसिक आंदोलन होता है। अहिंसा कोई महज कवायद नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्कृष्ट गुण है और साधन से ही प्राप्त हो सकता है।

गांधी जी ने मानव स्वभाव का गहन अध्ययन किया था। मनुष्य में देवत्व का अंश होते हुए भी वह अपनी वर्तमान स्थिति में आंशिक रूप से मनुष्य और आंशिक रूप से पशु है। मनुष्य अपने अज्ञान, मद और उद्दंडता में घूंसे का जवाब घूंसे से देने के लिए तैयार रहता है। मनुष्य प्रतिहिंसा को जीवन का नियम माने बैठा है, जबकि जीवन का वास्तविक नियम क्षमा, संयम और नियंत्रण है।

गांधी जी ने कभी अपने आपको स्वप्नदृष्टा नहीं माना। उनका दावा था कि वे व्यावहारिक आदर्शवादी है। उनकी दृष्टि में अहिंसा केवल ऋषियों और संतों के लिए नहीं है। वह सामान्य मनुष्यो ़के लिए है। अहिंसा मानव-जाति का नियम है जैसे हिंसा पशु का नियम है। पशु, शरीर-बल के अलावा और कोई नियम नहीं जानता। मनुष्य आत्मा की शक्ति का अनुसरण करता है।

गांधी जी का समुदायों की अपेक्षा व्यक्तियों पर अधिक भरोसा था। उनका विचार था कि समुदाय

की अपेक्षा व्यक्ति अधिक विवेकसम्पन्न होता है। उसमें उत्तरदायित्व की भावना होती है। 1933 में गांधी जी ने सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया था। पर उन्होंने आन्दोलन के व्यक्तिगत रूप को चालू रखा था। 1940-41 के सत्याग्रह को भी उन्होंने सामूहिक सविनय अवज्ञा आंदोलन बनाया। गांधी जी मानते थे कि समुदाय में अंधानुकरण की प्रवृत्ति होती है। यह आवेश में जल्दी आता है। व्यक्ति का जीवन अपेक्षाकृत संयत होता है।

गांधी जी घोर आशावादी थे। वे आशावाद की आस्तिकता का ही एक रूप मानते थे। उनके अनुसार आशावादी ईश्वर का डर मानता है, विनयपूर्वक अपनी आत्मा की आवाज सुनता है, उसके अनुसार आचरण करता है। उसका मूलमंत्र होता है-ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छे के लिए करता है। गांधी जी की दृष्टि में आशावादी प्रेम में मग्न रहता है। वह किसी को अपना दुश्मन नहीं मानता। इससे वह निडर होकर जंगलों और गांवों की सैर करता है। वह मौत से नहीं डरता। वह शरीर की चिन्ता नहीं करता।

गांधी जी के तत्वदर्शन में श्रद्धा का महत्वपूर्ण स्थान है। गांधी जी ने श्रद्धा को ईश्वरीय विभूति माना है और उसे आत्म-विश्वास, ईश्वर-विश्वास के साथ जोड़ा है। उनका कहना है कि ''जब चारों ओर काले बादल दिखाई देते हों तो, किनारा कहीं नजर न आता हो और ऐसा मालूम होता हो कि बस अब डूबे, तब भी जिसे विश्वास हो कि मैं हर्गिज न डूबंगा, उसे कहते हैं श्रद्धावान।

गांधी श्रद्धा को एक सार्वभौम तत्व मानते हैं। उनका यहां तक कहना है कि श्रद्धा और विश्वास न रहे तो प्रलय हो जाए। संसार के हर धर्म में ऐसे पीर-पैगम्बर, साधु-संत, ज्ञानी-महात्मा हुए हैं, जिन्होंने तपस्या और भक्ति का जीवन बिताया है। ऐसे व्यक्तियों के वचनों और अनुभवों का आदर करना मानव जाति के लिए कल्याणकारी है। यह काम श्रद्धा कर जाती है। दूसरों की आँख जहां चकाचौंध में पड़ जाती है वहां श्रद्धालु की आंख स्पष्ट रूप से दीपकवत् सब देख लेती है। जहां श्रद्धा है, वहां पराजय नहीं।

गांधी जी कोरे बुद्धिवाद के विरूद्ध थे। उनके विचार से मनुष्य जो कुछ भी करता है या करना चाहता है, उसका समर्थन करने के लिए प्रमाण भी ढूँढ़ निकालता है। जब बुद्धिवाद सर्वज्ञता का दावा करने लगे, तब वह भयंकर राक्षस बन जाता है। बुद्धि को ही सर्वज्ञ मानना उतनी ही बुरी मूर्तिपूजा है जितनी ईंट पत्थर को ही ईश्वर मानकर उनकी पूजा करना। निरी व्यावहारिक बुद्धि, सत्य का आवरण है, वह सोने की पात्र है जो सत्य के वास्तविक रूप को ढक देता है। विद्वता हमें जीवन की अनेक संकटापन्न अवस्थाओं में सफलतापूर्वक उबार सकती है, पर प्रलोभन के समय हमारा साथ नहीं देती। उस हालत में अकेली श्रद्धा ही उबारती है। श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, श्रद्धा से अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञान की वृद्धि होती है। उससे अन्तःकरण की शुद्धि होती है। बुद्धि के बाह्य ज्ञान की सृष्टि के कारण ज्ञान की वृद्धि होती है, पर उससे अन्तःकरण की शुद्धि होती हो ऐसी अनिवार्यता नहीं है। अत्यंत बुद्धिशाली लोग, अत्यन्त चरित्र भ्रष्ट भी पाये जाते हैं। श्रद्धा के साथ चरित्र-शून्यता असंभव है।

गांधी जी त्याग के समर्थक थे। वे जीवन में भौतिक सुख-सुविधाओं को कम से कम करने के पक्षपाती थे। गांधी जी ने मध्ययुगीन संतों की भांति दीनता, विनम्रता और दरिद्रता को जानबूझकर अपनाने पर जोर दिया है, वे आत्मा के विकास के लिए शरीर को कसना आवश्यक मानते हैं। सब जीवों के साथ एकता की अनुभूति के लिए मनुष्य को त्याग और बलिदान का सहारा लेना होगा। गांधी जी के अनुसार सत्याग्राही का जीवन आत्म-समर्पण का होना चाहिए। वह अपनी सभी क्षमताओं का उपयोग जनसेवा के लिए करता है।

गांधी जी के मनोविज्ञान के लिए आवश्यक है कि हम यह जानने का प्रयत्न करें कि गांधी जी की स्वयं अपने बारे में क्या राय थी। गांधी जी कठोर आत्म-निरीक्षक थे और उन्होंने अपनी दुर्बलताओं

तथा उन दुर्बलताओं पर विजय पाने के अपने प्रयत्नों को संसार के सामने एक खुली किताब की तरह स्पष्ट किया है। गांधी जी के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं था। उन्होंने अपनी रचनाओं में, अपने अंतर्विरोधां तथा आंतरिक संघर्षों का स्पष्टता से उद्घाटन किया है। गांधी जी आजीवन आध्यात्मिक साधना के पथ पर चले। उन्होंने जीवन के हर मोड़ पर अपनी कमजोरियों पर विजय पाने की कोशिश की। यदि उनसे कभी कोई भूल हुई तो उन्होंने उसे स्वीकार करने में अपनी हेठी न समझी।

गांधी जी सत्य के शोधक थे। वे मुक्ति पाना चाहते थे, लेकिन इसके लिए हिमालय की गुफा में जाना और ध्यानलीन होना उन्हें अभीष्ट न था। वे मनुष्य की सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना चाहते थे। उन्होंने अपने आप को दीन से दीन व्यक्ति के साथ अभिन्न माना। गांधी जी का आत्म-विश्लेषण, अंग्रेजी कवि 'जॉन मिल्टन' की 'ऑन हिज ब्लाइन्डनेस' (नेत्रहीनता) विषयक कविता में व्यक्ति विचारों की भांति है। ईश्वर बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं के ऐश्वर्य से प्रभावित नहीं होता। ईश्वर तो अपने दीन-हीन सेवकों की निष्ठा का प्रेमी है। गांधी जी भी अपने जीवन में दरिद्र नारायण के पुजारी थे। वे अपने व्यक्तित्व को रजकण के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे। हर कोई सड़क की धूल को अपने पैरों से रौंदता हुआ चलता है। उनके जीवन का लक्ष्य था, मानवता की सेवा में अपने-आपको मिटा देना। गांधी जी की दृष्टि में अहिंसा विनम्रता की पराकाष्ठा थी। उनके सामने राजा जनक का आदर्श रहता था जो महलों में रहते हुए भी संत थे। गांधी जी समग्र जीवन के साधक थे। धर्म, राजनीति शिक्षा, समाज अर्थ ये सभी क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। वे स्वप्नदृष्टा थे, पर अपने सपनों को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे। उनकी दृष्टि में जीवन, मृत्यु की शय्या समझकर चलें, वे इस मौत के बिछौने में अकेले न सोयें हमेंशा यमदूत को साथ लेकर सोयें। मृत्यु से कहें कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है तो ले जा, मैं तो तेरे मुंह में नाच रहा हूँ। जब तक नाचने देगा, नाचूंगा, नहीं तो तेरी गोद में सो जाउंगा।'' गांधी जी ने अपने अनुयाइयों को सलाह दी थी कि मौत के भय से मुक्त हर पुरूष या स्त्री स्वयं मर कर अपनी और अपनों की रक्षा कर सकती है। मनुष्य मरने से डरता है, इसलिए घुटने टेक देता है। कोई मरने के बदले सलाम करना पसंद करता है, कोई धन देकर जान छुड़ाता है, कोई मुंह में तिनका लेता है। कोई चींटी की तरह रेंगना पसंद करता है। इसी तरह कोई स्त्री लाचार होकर जूझना छोड़ पुरूष की पशुता के वश में हो जाती है। सलामी से लेकर सतीत्व-भंग तक की क्रियाएं एक ही चीज की सूचक हैं। जीवन का लोभ मनुष्य से सब कुछ करा सकता है। अतएव, जो जीवन का लोभ छोड़कर जीता है, वही सच्चा जीवन है, जीवन का स्वाद लेने के लिए हमें जीवन के लोभ का त्याग करना होगा।

गांधी जी के दर्शन में अंतरात्मा की आवाज काफी महत्व है, उन्होंने अपने जीवन के सभी महत्वपूर्ण फैसले अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार किए थे। उनका विचार था कि मनुष्य की अंतरात्मा अभ्यास से जागृत होती है। वह मनुष्य-मात्र में स्वभावतः जागृत नहीं होती। उसे जगाने के लिए पवित्र वायुमण्डल की जरूरत होती है। गांधी जी ने अंत:करण की परिभाषा करते हुए कहा कि ''परिपक्व बुद्धि के रास्ते हमारे अंतरपट पर पड़ने वाली प्रतिध्वनि है।'' गांधी जी को अपने जीवन में अनेक रहस्यवादी अनुभव हुए थे।

गांधी जी ने अपनी सतत् साधना द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी। वे क्रोध को सत्याग्रही के लिए आत्मघाती समझते थे। शुरू में उन्हें प्रचण्ड क्रोध आता था। अपनी पत्नी से वे प्रायः क्रुद्ध हो जाते थे। एक बार दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अपनी पत्नी को घर से निकालने तक का प्रयत्न किया था, लेकिन गांधी जी ने धीरे-धीरे क्रोध पर विजय पाने का अभ्यास किया। उन्होंने जाना कि क्रोध से मनुष्य का नाश होता है। यदि इस शक्ति का संरक्षण किया जाए तो वह मनुष्य को वास्तविक रूप से बलवान बनाती है, इतना बलवान कि वह संसार को हिला सकता है। गांधी जी के शब्दों में ''क्रोध के लक्षण शराब और अफीम दोनों से मिलते हैं। शराबी की भांति क्रोधी मनुष्य भी पहले आवेश वश लाल-

पीला होता है। फिर आवेश मंद होने पर भी क्रोध न घटा तो वह अफीम का काम करता है और मनुष्य की बुद्धि को मंद कर देता है। अफीम की तरह वह दिमाग को कुरेद डालता है। क्रोध के लक्षण क्रमशः सम्मोह, स्मृतिभं्रश और बुद्धिनाश माने गए हैं।

गांधी जी के अनेक आलोचकों ने उन पर दुराग्राही होने का आरोप लगाया है। यह गांधी जी के प्रति अन्याय है। गांधी जी अपने सिद्धान्तों की बुनियादी बातों पर तो नहीं झुकते थे। लेकिन विवरण की बातों पर हमेंशा झुकने के लिए तैयार रहते थे। उन्हें स्वेच्छाचारिता से विरक्ति थी। जिस तरह उन्हें अपनी स्वतंत्रता प्रिय थी, वे दूसरों की स्वतंत्रता का भी आदर करते थे। वे अपने विरोधियों को हर तरह से अपना विचार समझाने की कोशिश करते थे और तर्क द्वारा उनका मत-परिवर्तन करना चाहते थे। उन्होंने अपने विचारों को कभी किसी पर बलपूर्वक आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया।

गांधी जी लकीर के फकीर नहीं थे। यदि वे शास्त्रों की किसी बात से सहमत न हो पाते थे, तो उसे त्यागने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। गांधी जी ने मानव जीवन को समझौतों की श्रृंखला कहा है।

गांधी जी के जीवन में विरोधियों की कमी नहीं रही। ब्रिटिश शासक मुस्लिम लीग नेता कट्टर पंथी हिन्दू, वाममार्गी, साम्यवादी कार्यकर्ता, क्रान्तिकारी देशभक्त, इन सभी का गांधी जी के सिद्धान्तों और सद्भावना में अविश्वास था। गांधी जी के अनेक विरोधियों ने समय-समय पर उनके ऊपर प्राण घातक हमले किये थे और उनकी जान लेने की कोशिश की थी। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के दौरान मीरआलम नामक एक पठान गांधी जी की समझौता-वृत्ति से असंतुष्ट था किन्तु गांधी जी ने क्षमा को वीर का आभूषण माना है। गांधी जी के निकटवर्ती साथियों से जब कभी कोई भूल होती थी तब गांधी जी इसे अपना दोष मानते थे और उसका स्वयं प्रायश्चित करते थे।

गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन और साहित्य प्रेमतत्व से ओत प्रोत हैं उनके विचार से प्रेमतत्व ही संसार पर शासन करता है। विनाश के निरंतर जारी रहते हुए भी यह विश्व बराबर चलता ही रहता है। असत्य पर सत्य सदा जय पाता है, प्रेम, घृणा को जीत लेता है, ईश्वर शैतान पर सदैव विजय पाता है। गांधी जी के अनुसार हर धर्म यह पुकार-पुकार कर कहता है कि प्रेम की ग्रन्थि से ही यह जगत बंधा हुआ है। विद्वतजन लोग यह सिखाते हैं कि यदि प्रेम-बंधन हो तो पृथ्वी का एक-एक परमाणु अलग हो जाए। यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम न होगा तो हम मृत प्राय ही होंगे। प्रेम कभी दावा नहीं करता। वह तो हमेंशा देता है। प्रेम हमेंशा कष्ट सहता है न झुंझलाता है, न बदला लेता है। जहां शुद्ध प्रेम होता है, वहाँ अधीरता का स्थान नहीं होता। शुद्ध प्रेम देह का नहीं, आत्मा से ही सम्भव है। देह का प्रेम, भोग़-प्रधान है। आत्म-प्रेम का कोई बंधन बाधा नहीं होता, परन्तु आत्म प्रेम में तपश्चार्य होती है, उसमें असीम धैर्य भी होता है, वह मृत्यु-पर्यन्त वियोग सहने के लिए तैयार रहता है। प्रेम यदि एक पक्षीय हो तो भी वहां सर्वांश में दुख नहीं हो सकता। शुद्ध प्रेम के लिए, दुनिया में कोई बात असंभव नहीं है। प्रेम से भरा हृदय, अपने प्रेम-पात्र की भूल पर दया करता है और खुद घायल हो जाने पर भी उससे प्यार करता है। अकेले सुख का स्थायी प्रेमी नहीं होता। गांधी जी की प्रेम की कल्पना यह थी कि वह कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हो सकता है। गांधी जी विकार को आग की तरह मानते थे। यह मनुष्य को घास की तरह जलाता है। घास के ढेर में एक तिनके को सुलगा दीजिए बस, सारा ढेर सुलग जाएगा।

गांधी जी ने मानव-हृदय में परिवर्तन करने और उसे आध्यात्मिक दिशा में मोड़ने के लिए प्रार्थना का महत्व स्वीकार किया है। उनके लिए प्रार्थना कोई धार्मिक अनुष्ठान मात्र न होकर एक अचूक मनोवैज्ञानिक संस्कार है। उनका मत है कि मनुष्यों के बीच ऐक्यभाव पैदा करने के लिए राम नाम की धुन जैसा दूसरा कोई सुंदर और सबल साधन नहीं है। कई नौजवान इस पर ऐतराज करते हैं कि मुंह से राम नाम बोलने से क्या लाभ ? जबकि हृदय से राम नाम की धुन जागृत नहीं की जा सकती। गांधी जी का इस बारे में विचार था कि जिस तरह गायक, विद्या

विशारद जब तक सुर नहीं मिलाता तब तक बराबर तार कसता रहता है और ऐसा करते हुए उसे योग्य स्वर मिल जाता है, उसी तरह हमारे भावपूर्ण हृदय के छिपे हुए तार, एकतान हो जाएंगे। यह अनुभव अकेले गांधी जी का नहीं था, कई दूसरों का भी था। वे खुद इस बात के साक्षी थे कि कई नटखट लड़कों का तूफानी स्वभाव निरंतर रामनाम के उच्चारण से दूर हो गया और वे रामभक्त बन गये। लेकिन गांधी जी इसकी एक शर्त मानते थे मुंह से राम नाम बोलते समय वाणी को हृदय का सहयोग मिलना चाहिए, क्योंकि भावनाशून्य शब्द ईश्वर के दरबार तक नहीं पहुंचते।

भारतीय संतों ने संतोष को सुख का कारण माना है। संतोष को 'धन' कहा गया है। इस धन के आने से, और सारे धन, धूल के समान प्रतीत होने लगते हैं। आधुनिक सभ्यता मनुष्य की आवश्यकताओं को बढ़ाने पर जोर देती है। इससे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा पैदा होती है और असंतोष बढ़ता है। गांधी जी के विचार से जिंदगी की जरूरतों को बढ़ाने से मनुष्य आचार-विचार में पीछे रह जाता है। इतिहास यही बताता है। चाहे जितना मिलने पर भी जिस मनुष्य को असंतोष रहता है, उसे तो आदतों का गुलाम ही समझना चाहिए। अपनी वृत्ति की गुलामी से बढ़कर कोई दूसरी गुलामी नहीं हो सकती। सब ज्ञानियों और मानस शास्त्रियों ने पुकार-पुकार कर कहा है कि मनुष्य की मुक्ति केवल शुद्ध और सादे जीवन से ही संभव है।

आधुनिक भारत के महान क्रांतिकारी शिक्षा विचारक गांधी जी का शिक्षा सिद्धान्त एवं प्रयोग के क्षेत्र में अमूल्य योगदान है। गाँधी जी के शैक्षिक विचारों में आदर्शवाद, प्रकृतिवाद एवं यथार्थवाद का उत्तम समन्वय परिलक्षित होता है। अपने शिक्षा-दर्शन के द्वारा ही गाँधी जी विश्व के एक महान शिक्षा मनीषी माने जाते हैं। डॉ. एम0एस0 पटेल के शब्दों में, 'उनका शिक्षा दर्शन अपनी ्योजना में प्रकृतिवादी है, अपने उद्देश्यों में आदर्शवादी है एवं अपनी प्रकृति में प्रयोजनवादी है। गांधी जी के शैक्षिक विचारों का मूल्यांकन निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है-

गांधी जी के शब्दों में, 'शिक्षा से मेरा तात्पर्य है कि बालक एवं मनुष्य में निहित शक्तियों का शरीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास सर्वात्तम रूपेण है। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न प्रारम्भ ही, यह तो पुरूष एवं स्त्री को शिक्षित करने का एक साधन मात्र है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गांधी जी ने लिखने-पढ़ने के साधारण ज्ञान को शिक्षा न मानकर व्यक्ति की समग्र शक्तियों के विकास को ही शिक्षा माना है। गांधी जी के शब्दों में, 'सच्ची शिक्षा वह है जो बच्चों के आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं शारीरिक शंकाओं को उनके अन्दर से बाहर की ओर प्रकट करती एवं उत्तेजित करती है। इस प्रकार गांधी जी का दर्शन शिक्षा मानव के समग्र विकास पर बल प्रदान करती है।

गांधी जी ने जनशिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा, सह-शिक्षा, सेक्स शिक्षा, शारीरिक शिक्षा, भाषा शिक्षा, उच्च शिक्षा, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा, धार्मिक शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। इन सभी पक्षों पर उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

जन शिक्षा के तहत गांधी जी ने विद्यार्थियों एवं समस्त सेवकों को गांवों में जाकर ग्रामीणों की क्षमताओं के अनुकूल शिक्षित करने, उन्हें चारित्रिक विकास एवं स्वस्थ आदतों के सीखने एवं विचारों के अभिव्यक्तीकरण की समुचित शिक्षा देने को सलाह दी थी। उनका विचारर्थक ऐसी जन शिक्षा द्वारा ही भारत माँ का कल्याण हो सकता है। प्रौढ़ शिक्षा भी गांधी जी की जनशिक्षा का ही एक अंग है। उनका विचार शिक्षा निरक्षरता सबसे बड़ा कलंक है, जिसे शीघ्र ही दूर किया जाना आवश्यक है। उनका कहना था कि, 'मेरे विचार में दुखी होने एवं शर्म करने का जो कारण है, वहां निरक्षरता उतना नहीं है, जितना कि अज्ञानता। गांधी जी का यह भी कहना है कि 'मैं प्रौढ़-शिक्षा को उस साधारण अर्थ में जैसा हम लोग

समझते हैं, नहीं लूंगा, बल्कि वह तो अभिभावकों की शिक्षा होगी, जिससे वे अधिकाधिक अपने बच्चों के निर्माण में पर्याप्त उत्तरदायित्व निकाल सकें।

गांधी जी स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे स्त्रियों को उचित शिक्षा देकर उन्हें पति की गुड़िया के बजाय समाज में वीरांगना, दया, ममता एवं शिक्षा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा। सह-शिक्षा के बारे में गांधी जी का मत था कि सह-शिक्षा का भारत समस्त पर छोड़ देना चाहिए। उनके अनुसार परिवार में बालक-बालिकाओं का स्वतंत्रतापूर्वक विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए। गांधी जी सेक्स शिक्षा पर आधुनिक विचार रखते थे कि किशोरों को सेक्स शिक्षा द्वारा सेक्स भावना का शोधन एवं उस पर पूर्ण नियंत्रण की शिक्षा देना चाहते थे। गांधी जी शारीरिक शिक्षा को परम आवश्यक मानते थे। वे मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा में शिक्षा के हिमायती थे, उनका कहना था कि 'भारत को अपनी जलवायु, अपने ही प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अपने ही साहित्य में फलना-फूलना होगा फिर चाहे कितना ही घटिया वह इंग्लैंड के मुकाबलें में क्यों न हो। उनका मत था कि सार्वभौमिक दशाओं में हिन्दी ही सबसे उपयुक्त भाषा है। अतः हिन्दी ही राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है किन्तु गांधी जी उस शिक्षा में प्रादेशिक भाषा की अभिव्यक्ति, संस्कृत, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी के अध्ययन के भी पक्षधर थे।

उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में गांधी जी का विचार था कि इसका भार शासन पर डालकर जनता एवं निजी संस्थाओं पर डालना चाहिए। उनका मत था कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य भारत की विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय एवं संश्लेषण करके राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना होना चाहिए। वे विदेशी उच्च शिक्षा के बजाय स्वदेशी अनुभवजन्य ज्ञान के हिमायती थे। उनका मत है कि 'उच्च शिक्षा भी मेरी योजना के अन्तर्गत अधिक अच्छे पुस्तकालय, उत्तम प्रयोगशालायें एवं उच्च अनुसंधानात्मक होंगे। इनमें से वैज्ञानिक, यांत्रिक एवं विशेषज्ञ काम करेंगे, जो दूसरों की नकल न करके सच्चा शोध करेंगे। जिसका राष्ट्रीय आवश्यकताओं से सीधा सम्बन्ध होगा। गांधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य अहिंसात्मक क्रान्ति, नवभारत का निर्माण सं◌ास्कृतिक सुरक्षा, सत्य, अहिंसा जैसे सद्गुणों की प्राप्ति एवं आत्मनिर्भरता का विकास माना है। उनका विचार था कि सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय शिक्षा से राष्ट्रीय भावना का जागरण होगा। उनकी यह शिक्षा राष्ट्रीयता के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीयता की शिक्षा थी तथा वे प्रांतीयता जैसी संकीर्ण भावना का खण्डन करते थे।

गांधी जी धर्म का व्यापक अर्थ लगाते हुए धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिये थे। वे धर्म का अर्थ सत्य एवं अहिंसा से लगाते हैं। उनका कथन था कि यदि भारत को अपना आध्यात्मिक दीवालियापन घोषित नहीं करना है तो नवयुवकों के लिए धार्मिक शिक्षा सांसारिक शिक्षा के समान ही जरूरी है। उनका विचार था कि धार्मिक शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न मानकर कर्तव्यपरायणता, समाज सेवा एवं सह-गुणों के विकास को विस्तृत की जाय और इसके पाठ्य पुस्तकों में सत्य, अहिंसा, प्रेम एवं नैतिकता शामिल हो।

गांधी जी व्यावसायिक शिक्षा के पूर्ण पोषक थे। उनका कहना था कि, मैं बच्चे की शिक्षा का आरम्भ उपयोगी हस्तकला एवं शिल्प सिखा कर ही करूंगा तथा उसे इस योग्य बनाउंगा कि वह अपने प्रशिक्षण के आरम्भ से ही कोई न कोई उत्पादन कर सके। मेरी धारणा है कि बच्चे का सर्वोच्च विकास इसी प्रकार की शिक्षा प्रणाली में हो सकता है। उनका यह भी कहना है कि, शिक्षा उनकी विश्वसनीय होनी चाहिए कि उसकी समाप्ति पर बेरोजगारी न रहे। एक बालक यदि तीन घंटे शिल्प कार्य प्रतिदिन करे तो अवश्य ही कर लेगा।

गांधी जी शिक्षा द्वारा मानव का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। उनकी शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है-तात्कालिक उद्देश्य, आंतिक उद्देश्य

गांधी जी अपने शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्यों में चरित्र निर्माण का उद्देश्य, स्वतंत्र विकास का उद्देश्य, सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य, स्वभाव की पूर्णता का उद्देश्य, नागरिकता के विकास का उद्देश्य, जीविकोपार्जन का उद्देश्य, शारीरिक विकास का उद्देश्य एवं वैयक्तिक तथा सामाजिक उद्देश्यों के संकल्प का उद्देश्य को सम्मिलित किया है। वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों में समन्वयक का उद्देश्य के संदर्भ में गांधी जी का कथन है कि 'शिक्षा का उद्देश्य मात्र अच्छे व्यक्ति ही तैयार नहीं करना होता है, अपितु विभातिक तौर पर ऐसे नर-नारियों का निर्माण होता है जो समझ, जिसमें वे रहते हैं, में अपना उचित स्थान रखें तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य समझें।' वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों के समन्वय का उद्देश्य के तहत गांधी का मत है कि व्यक्ति ही सर्वोच्च विचार है, वैयक्तिकता का सम्यक विकास समाज को ही सम्भव है। वे व्यक्ति विकास एवं समाजिक विकास अन्योन्याश्रित होना चाहिए तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य में सामंजस्य स्थापित होना चाहिए।

गांधी जी के शिक्षा का अंतिम उद्देश्य है- आत्मानुभूति या ईश्वर का ज्ञान या अन्तिम वास्तविकता का अनुभव होना। शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य इस उद्देश्य से छोटे हैं, गांधी जी का कहना है कि ''एक विद्यार्थी ब्रह्मचारी होता है, क्योंकि उसका सभी अध्ययन एवं सभी क्रियाओं का लक्ष्य ब्रह्म की खोज है। ब्रह्म ही आत्मा है, अतएव आत्मबोध या ब्रह्मबोध शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। गांधी जी के अनुसार आत्मा का प्रशिक्षण एवं स्वयं एक महान कार्य है। आत्मा का विकास करना चरित्र निर्माण करना है एक व्यक्ति को ईश्वर या आत्मनुभूति के लिए कार्य करने के योग्य बनाना है।

चूंकि गांधी जी के समय से प्रचलित शिक्षा का पाठ्यक्रम अव्यक्त, दूषित, संकीर्ण, एकांकी एवं बेरोजगारीपरक था। अतः उन्होंने उपयोगिता सह सम्बन्ध, विविधता, स्वतंत्रता, रूचि, आवश्यकता एवं लोग जैसे पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत एवं सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर अपनी शिक्षा के पाठ्यक्रम का सृजन किया है। गांधी जी का पाठ्यक्रम क्रिया प्रधान शिल्प केन्द्रित पाठ्यक्रम है जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के सम्यक उत्थान के लिए बनाया गया है। इस तरह गांधी जी ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में हस्तकौशल, भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान, कला, शरीर शिक्षा एवं आचरणिक शिक्षा को सम्मिलित किया है।

गांधी जी ने अपनी शिक्षा-योजनाओं क्रिया पद्धति, अनुकरण पद्धति, श्रवण-भवन् निदिध्यासन पद्धति, संगीत पद्धति, सहयोग पद्धति, सह-सम्बन्ध पद्धति एवं मौखिक पद्धति को शामिल किया है, गांधी जी क्रिया पद्धति पर विशेष जोर देते थे। उनका विचार था कि 'मस्तिष्क की सच्ची शिक्षा शारीरिक अंगों-हाथ, आँख, नाक आदि के उचित अभ्यास एवं प्रशिक्षण से प्राप्त की जा सकती है। जिसके लिए उन्होंने खेल, प्रयोग, दर्शन एवं सुलेख तथा निरीक्षण पद्धति का सहयोग लेने की सलाह देते थे। इस तरह गांधी जी अनेक मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियों को समर्पित किया है।

गांधी जी अध्यापक में सत्य, अहिंसा, प्रेम, व्यापक, सहानुभूति, क्षमा, कर्तव्यपरायणता जागरूकता एवं उत्तम चरित्र जैसे गुणों का होना आवश्यक मानते थे, उनका विचार था कि एक अध्यापक को सच्चे गुरू, मित्र पथ-प्रदर्शक एवं सहयोगी के रूप में कोर्स करना चाहिए। उनका यह भी विचार था कि जब तक शिक्षा में दी जाने वाली बातें अध्यापक के आचरण में नहीं आयेगी, विद्यार्थियों पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसीलिए उन्होंने कहा है कि, मुझे ऐसे अध्यापक के प्रति दुःख होता है जो वाणी से कुछ कहता है और मन में कुछ रखता है। आर0एन0 रंगा के अनुसार गांधी जी के अध्यापक का कार्य एक प्रकाश स्तम्भ, एक संकेत बोर्ड, एक सन्दर्भ पुस्तक, एक शब्दकोष, एक द्रावक एवं एक मिश्रण प्रक्रिया को गति देने वाले के रूप में होना चाहिए।

गांधी शिक्षार्थी की उन्नति में माता-पिता को विशेष वरीयता देते हैं। वे शिक्षार्थी को विद्याभ्यासी, आचरणशक्ति एवं ब्रह्मचारी होना आवश्यक मानते हैं, उनके अनुसार विद्यार्थियों को अपने भीतर खोजना चाहिए और अपने व्यक्तिगत चरित्र की देख-भाल करनी चाहिए क्योंकि बिना चरित्र के शिक्षा किस काम की। वे विद्यार्थी में चरित्र बल, शारीरिक बल, आत्मिक एवं बौद्धिक बल, विनय, समाज तथा देश के प्रति निष्ठा, अहिंसा एवं जिज्ञासा जैसे गुण आवश्यक मानते थे।

गांधी जी शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन के प्रबल समर्थक थे। वे दमनात्मक, अनुशासन के कट्टर विरोधी थे। वे प्रभावात्मक एवं मुक्तयात्मक सिद्धांत पर चलते हुए स्वतः नियमन एवं विनयन द्वारा आत्मानुशासन के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि शिक्षार्थियां को सदैव शिक्षा शास्त्री रहना चाहिए, क्योंकि क्रियाशील को अनुशासन हीनता की फुर्सत कहाँ। अनुशासन स्थापना हेतु वे अध्यापक को भी अनुशासित रहने की सलाह देते थे, इसलिए वे समस्त शिक्षा प्रणाली को सहयोग, मित्रता, सहकारिता एवं क्रिया द्वारा संचालित करना चाहते थे।

गांधी जी विद्यालयों को कर्मशाला, सामुदायिक केन्द्र एवं सामाजिक जीवन स्थल मानते थे। उनका मत था कि विद्यालय ऐसा होना चाहिए जहां विद्यार्थिय का सर्वांगीण विकास हो जहां चरित्रवान अध्यापकों एवं विद्यार्थियांके द्वारा अध्ययन-अध्यापन हो। उनका मत था कि विद्यालयों के सम्पूर्ण शिक्षा हस्त-कौशल के अध्ययन से दी जाय, जहां शरीर, मन एवं आत्मा का पूर्ण विकास हो।

गांधी जी विद्यार्थियों पर पाठ्य पुस्तकों का बोझ लादने के विरोधी थे। उनका विचार था कि छात्र की वास्तविक पाठ्य पुस्तक उसका अध्यायन है। उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि ''सामान्य ज्ञान की जानकारी पाने से पहले कम आयु के ज्ञान रहित बच्चों को वर्ण परिचय एवं पढ़ने की योग्यता में दबाना ठीक नहीं, इससे वे मौखिक शिक्षा को आत्मसात करने के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

गांधी जी की मनोवैज्ञानिक धारणाएं भारतीय संस्कृति के शाश्वत तत्वों पर आधारित है। संतों ने इन पर सदा जोर दिया है। लेकिन उनके निकट ये मनोवैज्ञानिक धारणाएं वैयक्तिक साधना का अंग थीं। गांधी जी ने उन्हें सामाजिक रूप दिया। कई विचारक ने, जो गांधी जी को अत्यंत आदर की दृष्टि से देखते थे, उन्होंने गांधीजी को चरमवादी और निषेधात्मक कहा है। उनका कहना है कि गांधी जी जीवन में त्याग और तपस्या जैसी प्रवृत्तियों पर जरूरत से ज्यादा जोर देकर जीवन को नीरस और अनाकर्षक बना देते हैं। किन्तु गांधी जी ने अपनी मनोवैज्ञानिक धारणाओं को जैसे त्याग, तपस्या, संतोष आदि की धारणाओं को कभी निषेधात्मक नहीं माना। वे इन्हें रचनात्मक धारणाएं मानते हैं, उनके अनुसार सुखी जीवन का 'रहस्य' त्याग में हैं, वे त्याग को जीवन और भोग-विलास को मृत्यु समझते हैं उनका विश्वास था कि जैसे-जैसे मनुष्य अपने शरीर को कसता है, उसी अनुपात में उसकी आत्म-शक्ति बढ़ती है। यदि मनुष्य विश्वात्मा के साथ अपनी एकता स्थापित करता है तो अपने अहम को मारना होगा।

गांधी जी के त्याग और वैराग्य का अर्थ संसार से पलायन नहीं है। वे सच्चे कर्मयोगी थे। उनका सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए आत्म-समर्पण का जीवन था। गांधी जी ने अपने सामाजिक और राजनीतिक दर्शन में त्याग, संयम, बलिदान और आत्म-समर्पण जैसे आदर्शों का सामाजिक जीवन के कर्तव्यों एवं दायित्वों के साथ सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया है और मानव-चिन्तन के इतिहास में यह उनकी महत्वपूर्ण देन है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गांधी जी विश्व के महान शिक्षा मनीषियों में प्रमुख हैं। वे प्रथम भारतीय शिक्षा शास्त्री थे, जिन्होंने भारत की संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं मूल आवश्यकताओं के अनुरूप राष्ट्रीय शिक्षा योजना

का सूत्रपात किया। आज के बदलते परिवेश में एवं पाश्चात्य शिक्षा के रंग में सरोबार भारत के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हमारी राष्ट्रीय शिक्षा धारा गांधी जी के शैक्षिक सिद्धान्तों एवं विचारों के अनुरूप हो तभी इस देश का कल्याण सम्भव है और पुनः शैक्षिक गुरू के रूप में विश्व में अपनी पहचान बना सकेगा।

सन्दर्भ

गांधी, मो0क0, हिन्द स्वराज नवजीवन प्रकाशन पृ. 23

लाल, प्यारे पूर्णाहुति, चतुर्थ खण्ड पृ. 41

रोला, रोमां, महात्मागाँधी जीवन और दर्शन अनु0पी0सी0 ओझा, इलाहाबाद,लोक भारती प्रकाशन,

हरिजन, 12 दिसम्बर, 193 पृ. 326-27

गांधी की आत्म कथा, 1948 पृ. 6-7

विनोबा(1958) हिन्द स्वराज (अनुवादक-अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी), अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन,पृ. 15-18

गांधी, मोहनदास करम चन्द (1969) मेरे सपनों का भारत, वाराणसी,सर्व सेवा संघ प्रकाशन, पृ. 9

पटेल, एम0एस0 (1956), एजूकेशनल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, अहमदाबाद, नव जीवन पब्लिशिंग हाउस

अविनाशलिंगम, टी0एस0, गाँधी जी एक्सपेरीमेन्ट्स इन एजूकेशन, पृ. -77

पटेल एम0एस0, (1948), दि टिचरस्, वर्ल्ड, पृ. -9

गाँधी, (1949), ‘टू दि स्टूडेन्ट्स, अहमदाबाद,नव जीवन पब्लिशिंग हाउस पृ. 52-53

गाँधी, (1953), ‘टुवर्ड्स न्यू एजूकेशन’, अहमदाबाद, नव जीवन पब्लिशिंग हाउस, पृ. -51

मिश्र, डॉ. आत्मानन्द, ‘भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक’ पृ. -268

गाँधी, (1940), ‘दि इयरबुक ऑफ एजूकेशन’, पृ. -441

देसाई महाद्वीप, लोका में गाँधी जी के साथ, पृ. -109

* * *